नईदुनिया

संपादकीय

सरकारी अस्पतालः सेवा का मंदिर, सौदे की दुकान नहीं

सरकार का सबसे बड़ा धर्म जनता की सेवा है और सरकारी अस्पताल उस सेवा के सबसे पवित्र केंद्र हैं। जब कोई गरीब, मजदूर, किसान या सामान्य नागरिक बीमारी से जूझते हुए सरकारी अस्पताल पहुंचता है, तो वह केवल दवा नहीं, बल्कि सम्मान, सहानुभूति और भरोसा भी चाहता है। ऐसे में एम्स भोपाल में सामने आई घटना ने पूरे स्वास्थ्य तंत्र पर गंभीर सवाल खड़े कर दिए हैं। यदि मरीज या उसके परिजन से डायपर बदलने अथवा अन्य सामान्य सेवाओं के लिए पैसे मांगे जाते हैं, तो यह केवल नियमों का उल्लंघन नहीं, बल्कि सेवा भावना पर आघात है।

एम्स जैसे संस्थानों की स्थापना इसलिए की गई थी कि आम नागरिकों को विश्वस्तरीय और सुलभ उपचार मिल सके। मध्य प्रदेश सहित आसपास के राज्यों से हजारों मरीज उम्मीद लेकर यहां आते हैं। यदि सरकारी अस्पतालों में भी मरीज को हर छोटी-बड़ी सेवा के लिए अतिरिक्त भुगतान करना पड़े, तो फिर सरकारी और निजी अस्पतालों के बीच अंतर ही क्या रह जाएगा? गरीब परिवारों के लिए सौ-दो सौ रुपये भी बड़ा बोझ होते हैं।

यह सही है कि सरकारी अस्पतालों में स्टाफ की कमी, बढ़ता मरीज भार और संसाधनों का दबाव वास्तविक समस्याएं हैं। कई बार एक नर्स को दर्जनों मरीजों की देखभाल करनी पड़ती है। लेकिन यह परिस्थिति किसी भी कर्मचारी को मरीज से पैसे मांगने का अधिकार नहीं देती। डायपर बदलना, इंजेक्शन लगाना, मरीज की देखभाल करना और आवश्यक सहायता देना नर्सिंग सेवा का अभिन्न हिस्सा है। यदि कहीं ऐसी शिकायत मिलती है तो उसे भ्रष्टाचार और कर्तव्यहीनता मानते हुए तत्काल कठोर कार्रवाई होनी चाहिए।

इस घटना का सबसे चिंताजनक पक्ष यह है कि यदि प्रभावशाली परिवार के साथ ऐसा व्यवहार हो सकता है, तो गांव से आए गरीब और अनपढ़ मरीजों की स्थिति कितनी कठिन होती होगी। अधिकांश लोग शिकायत करने से डरते हैं और चुपचाप अपमान सहकर लौट जाते हैं। इससे सरकारी स्वास्थ्य व्यवस्था पर उनका भरोसा कमजोर होता है और वे मजबूरी में झोलाछाप या महंगे निजी इलाज की ओर रुख करते हैं।

सरकार को केवल भवन, मशीनें और बजट उपलब्ध कराने तक सीमित नहीं रहना चाहिए। रिक्त पदों पर शीघ्र भर्ती, कर्मचारियों को मानवीय व्यवहार का प्रशिक्षण, प्रत्येक वार्ड में प्रभावी निगरानी व्यवस्था, शिकायतों के त्वरित समाधान और सेवाओं की पूर्ण पारदर्शिता सुनिश्चित करना भी उतना ही आवश्यक है। अस्पतालों में उपचार से संबंधित सभी सुविधाओं और शुल्कों की स्पष्ट जानकारी सार्वजनिक रूप से प्रदर्शित होनी चाहिए ताकि किसी प्रकार की मनमानी की गुंजाइश न रहे।

सरकारी अस्पताल जनता के टैक्स से चलते हैं। इसलिए वहां कार्यरत प्रत्येक कर्मचारी को यह स्मरण रखना चाहिए कि वह किसी ग्राहक नहीं, बल्कि एक पीड़ित नागरिक की सेवा कर रहा है। स्वास्थ्य सेवा का आधार केवल आधुनिक तकनीक नहीं, बल्कि संवेदनशीलता और मानवीय व्यवहार भी है। यदि सेवा भाव समाप्त हो गया, तो करोड़ों रुपये की इमारतें भी लोगों का विश्वास नहीं जीत पाएंगी। सरकार को यह सुनिश्चित करना होगा कि सरकारी अस्पताल हमेशा सेवा के मंदिर बने रहें, क्योंकि एक बार टूटा हुआ भरोसा किसी भी बजट से वापस नहीं खरीदा जा सकता।

आजकल

बरसात के लिए आसमान तरसा अस्पताल मरीजों से भरे

मानसून की सुस्त चाल ने भोपाल समेत पूरे मध्यप्रदेश में लोगों की परेशानी बढ़ा दी है। बादल मंडरा रहे हैं, लेकिन पर्याप्त बारिश नहीं हो रही। तेज धूप और चिपचिपी उमस ने मौसम को बीमारी के अनुकूल बना दिया है। इसका असर अस्पतालों में साफ दिखाई दे रहा है, जहां मौसमी रोगों के मरीज लगातार बढ़ रहे हैं।

रुक-रुककर हो रही बूंदाबांदी और उमस ने बैक्टीरिया, वायरस और मच्छरों के पनपने के लिए अनुकूल वातावरण तैयार कर दिया है। उल्टी, दस्त, पेट दर्द, बुखार, डायरिया, वायरल संक्रमण और चर्म रोग के मामलों में तेजी आई है। सरकारी और निजी अस्पतालों में पिछले एक सप्ताह के दौरान मरीजों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज की गई है। विशेषज्ञों का मानना है कि गर्मी, उमस और दूषित खानपान इसके प्रमुख कारण हैं।

थोड़ी बारिश के बाद निकलने वाली तेज धूप से जगह-जगह पानी जमा हो रहा है, जो एडीज मच्छर के प्रजनन का केंद्र बन रहा है। भोपाल में डेंगू और चिकनगुनिया के शुरुआती मामले सामने आने लगे हैं। यदि जुलाई में लगातार बारिश हुई तो संक्रमण का खतरा और बढ़ सकता है। ऐसे में नगर निगम को फॉगिंग और लार्वा नष्ट करने का अभियान तेज करना होगा।

विशेषज्ञों के अनुसार अल नीनो के प्रभाव से मानसून कमजोर पड़ा है, लेकिन जुलाई के पहले सप्ताह में अच्छी बारिश की संभावना है। तब तक लोगों को उबला या फिल्टर किया हुआ पानी पीना चाहिए, ताजा भोजन करना चाहिए और घर के आसपास पानी जमा नहीं होने देना चाहिए। बुखार, लगातार दस्त या तेज शारीरिक दर्द होने पर तुरंत चिकित्सक से संपर्क करना आवश्यक है।

मानसून की देरी केवल किसानों की चिंता नहीं, बल्कि जनस्वास्थ्य का भी बड़ा प्रश्न है। मौसम पर हमारा नियंत्रण नहीं, लेकिन सावधानी और समय पर उपचार से बीमारियों पर अवश्य नियंत्रण पाया जा सकता है।

मध्यप्रदेश में भाजपा और कांग्रेस में अंदरूनी कलह

राजेन्द्र कानूनगो

मध्यप्रदेश की सियासत में 'अंदरूनी कलह' कोई नया शब्द नहीं है, लेकिन हाल के वर्षों में भाजपा और कांग्रेस दोनों ही दलों में यह अंतर्विरोध एक नए और गंभीर मोड़ पर पहुंच गया है। सत्ता पक्ष (भाजपा) जहां संगठन में भारी विस्तार और बाहरी नेताओं के आगमन के बाद 'मूल बनाम आयातित' कार्यकर्ताओं की लड़ाई से जूझ रहा है, वहीं विपक्ष (कांग्रेस) लगातार हार के बाद नेतृत्व संकट, गुटबाजी और वजूद बचाए रखने के आंतरिक संघर्ष से गुजर रहा है।

मध्यप्रदेश के मौजूदा राजनीतिक परिदृश्य में दोनों प्रमुख दलों की अंदरूनी कलह, उसके कारणों और उसके दूरगामी प्रभावों का विस्तृत विश्लेषण करना जरूरी है।

भाजपा अपनी मजबूत सांगठनिक संरचना और कड़े अनुशासन के लिए जानी जाती है। हालांकि, 2020 के तख्तापलट (सिंधिया के दलबदल) और 2023 के विधानसभा चुनाव के बाद भारी बहुमत से सत्ता में लौटने के बावजूद, पार्टी के भीतर असंतोष की सुगबुगाहट लगातार तेज हुई है।

भाजपा की अंतर्कलह का सबसे बड़ा कारण पार्टी का अत्यधिक विस्तार है। 2020 में ज्योतिरादित्य सिंधिया के साथ आए कांग्रेस नेताओं और कार्यकर्ताओं को पार्टी में महत्वपूर्ण स्थान मिला। इसके बाद 2023-24 के दौरान भी 'जॉइनिंग टोली' के माध्यम से हजारों विपक्षी नेताओं को भाजपा में शामिल किया गया।

दशकों से भाजपा की विचारधारा के लिए जमीन पर लाठियां खाने वाले मूल कार्यकर्ता अब खुद को उपेक्षित महसूस कर रहे हैं। कई क्षेत्रों में पुराने भाजपा नेताओं और नए आए 'कांग्रेसी पृष्ठभूमि' के नेताओं के बीच वर्चस्व की जंग छिड़ी हुई है।

शिवराज सिंह चौहान के केंद्रीय राजनीति में जाने और डॉ. मोहन यादव को मुख्यमंत्री बनाए जाने के बाद मध्यप्रदेश भाजपा में एक बड़े युग का परिवर्तन हुआ। मोहन यादव सरकार और नए प्रदेश नेतृत्व के आने से कई स्थापित और वरिष्ठ क्षत्रप, जैसे गोपाल भार्गव, भूपेंद्र सिंह और बिसाहूलाल सिंह, हाशिए पर चले गए हैं या उनकी भूमिकाएं सीमित हो गई हैं।

यह असंतोष खुलकर बगावत का रूप तो नहीं ले पाता, शायद अनुशासन के डर से, लेकिन समय-समय पर नेताओं के बयानों और प्रशासनिक ट्रांसफर-पोस्टिंग को लेकर नाराजगी के रूप में सामने आता रहता है।

अक्सर भाजपा विधायक और जिला स्तर के नेता यह शिकायत करते हैं कि सरकार में 'अफसरशाही' हावी है और जनप्रतिनिधियों की सुनवाई नहीं हो रही है। जब कार्यकर्ताओं के काम नहीं होते, तो वे अपनी ही सरकार के खिलाफ असंतोष व्यक्त करने लगते हैं, जो सोशल मीडिया या बंद कमरों की बैठकों में कलह के रूप में दिखाई देता है।

अब यदि कांग्रेस की बात करें तो प्रदेश में अंदरूनी कलह एक लाइलाज बीमारी की तरह उभर आई है। 2018 में सत्ता में आने के बाद भी आपसी खींचतान तीन नेताओं—कमलनाथ, दिग्विजय सिंह और ज्योतिरादित्य सिंधिया—के बीच रही और उसी के कारण सरकार गिर गई थी। वैसे आज भी स्थिति बहुत ज्यादा नहीं बदली है।

विधानसभा और लोकसभा चुनावों में करारी शिकस्त के बाद केंद्रीय नेतृत्व ने कमलनाथ को हटाकर जीतू पटवारी को प्रदेश अध्यक्ष और उमंग सिंघार को नेता प्रतिपक्ष बनाया। यह बदलाव युवाओं को आगे लाने के लिए किया गया था, लेकिन इसने आंतरिक कलह को और हवा दे दी।

कमलनाथ और दिग्विजय सिंह के समर्थक गुट पूरी तरह से नए नेतृत्व का सहयोग नहीं कर रहे हैं। कई वरिष्ठ नेता जीतू पटवारी की कार्यशैली पर सार्वजनिक रूप से या बंद कमरों में सवाल उठा चुके हैं।

लगातार हार से टूट चुके कार्यकर्ताओं में भारी निराशा है। जब बड़े नेता, जैसे सुरेश पचौरी, दीपक जोशी और रामनिवास रावत, पार्टी छोड़कर भाजपा में शामिल होते हैं, तो नीचे का संगठन बिखर जाता है। बचे हुए नेताओं में इस बात की होड़ मची रहती है कि पार्टी पर कब्जा किसका रहेगा, बजाय इसके कि भाजपा से कैसे लड़ा जाए।

कांग्रेस में चुनाव के दौरान टिकट वितरण को लेकर होने वाली कलह सड़कों पर आ जाती है। अनुशासन समिति होने के बावजूद नेताओं द्वारा एक-दूसरे के खिलाफ बयानबाजी आम बात है। गुटबाजी का आलम यह है कि एक गुट का नेता दूसरे गुट के उम्मीदवार को हराने के लिए 'भीतरघात' करने से भी गुरेज नहीं करता।

दोनों दलों की कलह में मुख्य अंतर यह है कि भाजपा में कलह का कारण अत्यधिक सत्ता, भारी विस्तार और नए चेहरों का आगमन है, जबकि कांग्रेस में लगातार हार, नेतृत्व का अभाव और पुरानी गुटबाजी प्रमुख कारण हैं। भाजपा में असंतोष बंद कमरों में, इशारों में या प्रशासनिक खींचतान के रूप में दिखाई देता है, जबकि कांग्रेस में यह सड़कों पर, सार्वजनिक बयानों और इस्तीफों के रूप में सामने आता है।

जब सत्ताधारी दल के भीतर मंत्रियों और विधायकों में खींचतान होती है, तो इसका सीधा असर प्रशासनिक फैसलों पर पड़ता है। ट्रांसफर उद्योग और मनपसंद अधिकारियों की नियुक्ति की होड़ में जनता की भलाई से जुड़े मुद्दे पीछे छूट जाते हैं।

कांग्रेस की आंतरिक कलह का सबसे बड़ा नुकसान राज्य की लोकतांत्रिक व्यवस्था को हो रहा है। एक मजबूत विपक्ष के अभाव में सरकार पर नियंत्रण कमजोर होता है। जनता के मुद्दों, जैसे बेरोजगारी, किसान उत्थान और कानून-व्यवस्था, पर सड़क पर उतरने के बजाय कांग्रेस नेता आपस में ही उलझे रहते हैं।

मतदाताओं में भ्रम: जनता जब दोनों ही दलों में सिरफुटव्वल देखती है, तो उसका राजनीतिक शुचिता पर भरोसा उठने लगता है। दलबदल और आंतरिक गुटबाजी के कारण मतदाता खुद को ठगा हुआ महसूस करता है कि उसने जिस विचारधारा को वोट दिया था, वह नेता अब पाला बदल चुका है।

प्रदेश की राजनीति इस समय एक संक्रमण काल से गुजर रही है। भाजपा के लिए चुनौती अपनी वैचारिक शुद्धता को बचाते हुए इस विशालकाय संगठन को अनुशासित बनाए रखने की है। यदि भाजपा ने अपने मूल कार्यकर्ताओं के असंतोष को समय रहते शांत नहीं किया, तो आगामी स्थानीय निकाय चुनावों और अन्य चुनावों में उसे अपनों से ही कड़ी चुनौती मिल सकती है।

दूसरी ओर, कांग्रेस के लिए यह 'करो या मरो' की स्थिति है। कांग्रेस की कलह वैचारिक नहीं, बल्कि व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं की है। जब तक कांग्रेस के बड़े नेता अपने अहं को छोड़कर सामूहिक नेतृत्व और जमीनी कार्यकर्ताओं को प्राथमिकता नहीं देंगे, तब तक पार्टी का इस अंतर्कलह से उबरना नामुमकिन है।

राजनीतिक दलों के लिए यह भी जरूरी है कि वे समय-समय पर संगठनात्मक संवाद को मजबूत करें और कार्यकर्ताओं की शिकायतों का समय पर समाधान करें। केवल चुनाव के समय सक्रिय होने से संगठन मजबूत नहीं होता। स्थानीय स्तर पर नेतृत्व को अवसर देना, पारदर्शी टिकट वितरण और विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध कार्यकर्ताओं का सम्मान ही किसी भी दल की सबसे बड़ी ताकत होता है। अन्यथा अंदरूनी असंतोष धीरे-धीरे चुनावी नुकसान का कारण बन सकता है।दोनों दलों की यह अंदरूनी कलह ही आने वाले समय में मध्यप्रदेश का नया राजनीतिक भविष्य तय करेगी।

चयनात्मक पर्यावरणवाद से नहीं बचेंगी भारत की नदियां

ललित शास्त्री

भारत की अधिकांश नदियां आज किसी एक धार्मिक अनुष्ठान से नहीं, बल्कि दशकों से चली आ रही प्रशासनिक विफलताओं के कारण संकट में हैं। देश के अधिकांश शहरों में सीवेज प्रबंधन की स्थिति दयनीय है। करोड़ों लीटर अनुपचारित सीवेज प्रतिदिन नालों के माध्यम से नदियों, तालाबों और झीलों में पहुंच रहा है। नगर निकायों के पास या तो पर्याप्त सीवेज शोधन संयंत्र नहीं हैं अथवा जो संयंत्र स्थापित हैं, वे पूरी क्षमता से कार्य नहीं कर रहे। परिणामस्वरूप हमारी नदियां धीरे-धीरे प्राकृतिक जलधाराओं से अधिक गंदे नालों में बदलती जा रही हैं।

आज एक प्रमुख राष्ट्रीय दैनिक के मुखपृष्ठ पर प्रकाशित समाचार- 'नदी में दूध प्रवाहित करना भी प्रदूषण है'-ने पर्यावरण संरक्षण को लेकर एक नई बहस छेड़ दी है। वैज्ञानिक दृष्टि से इसमें कोई विवाद नहीं है कि यदि बड़ी मात्रा में दूध किसी नदी में प्रवाहित किया जाए तो उससे जल की गुणवत्ता प्रभावित होती है। दूध एक जैविक पदार्थ है, जो पानी में घुलकर घुलित ऑक्सीजन की मात्रा कम करता है और जलीय जीवों पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है। इसलिए पर्यावरण विशेषज्ञों की चिंता को नकारा नहीं जा सकता।

लेकिन क्या यहीं से बहस समाप्त हो जानी चाहिए?०वास्तविक प्रश्न यह है कि क्या भारत की पर्यावरणीय चेतना केवल ऐसे प्रतीकात्मक प्रसंगों तक सीमित रह गई है, जबकि हमारी नदियां प्रतिदिन कहीं अधिक गंभीर और व्यापक प्रदूषण का सामना कर रही हैं। यदि ऐसा है, तो हमें पर्यावरण विज्ञान के साथ-साथ पर्यावरणीय प्राथमिकताओं पर भी गंभीरता से विचार करना होगा।

भारत की अधिकांश नदियां आज किसी एक धार्मिक अनुष्ठान से नहीं, बल्कि दशकों से चली आ रही प्रशासनिक विफलताओं के कारण संकट में हैं। देश के अधिकांश शहरों में सीवेज प्रबंधन की स्थिति दयनीय है। करोड़ों लीटर अनुपचारित सीवेज प्रतिदिन नालों के माध्यम से नदियों, तालाबों और झीलों में पहुंच रहा है। नगर निकायों के पास या तो पर्याप्त सीवेज शोधन संयंत्र नहीं हैं अथवा जो संयंत्र स्थापित हैं, वे पूरी क्षमता से कार्य नहीं कर रहे। परिणामस्वरूप हमारी नदियां धीरे-धीरे प्राकृतिक जलधाराओं से अधिक गंदे नालों में बदलती जा रही हैं।

यदि कोई सामान्य नागरिक किसी भी भारतीय शहर का निरीक्षण करे तो उसे खुले नालों में बहता घरेलू अपशिष्ट, व्यावसायिक प्रतिष्ठानों से निकलता रासायनिक पानी, प्लास्टिक कचरा और औद्योगिक अवशेष दिखाई देंगे। अनेक कार सर्विस स्टेशन बिना समुचित अपशिष्ट उपचार व्यवस्था के तेल, ग्रीस और डिटर्जेंट युक्त पानी सीधे नालियों में छोड़ते हैं। यह सब उस समय हो रहा है, जब जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1974 और पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 जैसे कठोर कानून पहले से मौजूद हैं। प्रश्न कानूनों की अनुपस्थिति का नहीं, बल्कि उनके निष्पक्ष और प्रभावी क्रियान्वयन का है।

यदि पर्यावरण संरक्षण वास्तव में हमारी प्राथमिकता है, तो प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों की सक्रियता उन मामलों में अधिक क्यों दिखाई देती है, जो प्रतीकात्मक महत्व रखते हैं, जबकि प्रतिदिन होने वाले व्यापक प्रदूषण पर अपेक्षित कठोरता नहीं दिखती? राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों को निरीक्षण, नमूने लेने, उद्योग बंद कराने और अभियोजन चलाने तक की कानूनी शक्तियां प्राप्त हैं। फिर भी अनुपचारित सीवेज नदियों में बह रहा है, छोटे उद्योग पर्यावरणीय मानकों की अनदेखी कर रहे हैं और अनेक व्यावसायिक प्रतिष्ठान बिना प्रभावी निगरानी के संचालित हो रहे हैं। धार्मिक आस्थाओं से जुड़े पर्यावरणीय प्रश्नों पर भी संतुलित दृष्टिकोण आवश्यक है। प्रत्येक धर्म की कुछ परंपराएं ऐसी हैं, जिनका पर्यावरण पर प्रभाव पड़ सकता है। मंदिरों में चढ़ावा, प्रतिमा विसर्जन, बड़े धार्मिक आयोजन अथवा अन्य गतिविधियां यदि पर्यावरण को प्रभावित करती हैं, तो उनका वैज्ञानिक परीक्षण होना चाहिए। उसी प्रकार यदि किसी अन्य धार्मिक समुदाय के पर्वों के दौरान पशुओं के वध से उत्पन्न जैविक अपशिष्ट सार्वजनिक नालियों या जलस्रोतों तक पहुंचते हैं, तो उनका मूल्यांकन भी उसी वैज्ञानिक कसौटी पर होना चाहिए। पर्यावरण विज्ञान न किसी धर्म का पक्षधर होता है और न विरोधी। प्रदूषण की पहचान उसके प्रभाव से होती है, न कि प्रदूषक के धर्म से। यदि नदी में दूध प्रवाहित करना पर्यावरणीय दृष्टि से अनुचित माना जाता है, तो वही मानदंड उन सभी गतिविधियों पर भी लागू होने चाहिए, जो किसी भी रूप में जलस्रोतों को प्रदूषित करती हैं। कानून का व्यवहार समान होना चाहिए। यदि उसमें चयन दिखाई देता है, तो जनता का विश्वास पर्यावरणीय संस्थाओं और पर्यावरणीय विमर्श, दोनों से कम होने लगता है।

मीडिया की भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। यदि किसी धार्मिक आयोजन में नदी में दूध प्रवाहित होने की घटना प्रमुख खबर बनती है, तो उसी गंभीरता के साथ प्रतिदिन नदियों में बहने वाले अनुपचारित सीवेज, प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों की निष्क्रियता, अवैध औद्योगिक अपशिष्ट, कार सर्विस स्टेशनों से होने वाले प्रदूषण और नगर निकायों की विफलताओं पर भी व्यापक खोजी रिपोर्टें प्रकाशित होनी चाहिए। अन्यथा पर्यावरणीय विमर्श संतुलन खो देता है।

चार दशक से अधिक समय तक पर्यावरण और वन्यजीवन पर रिपोर्टिंग करते हुए मैंने मध्य भारत की अनेक नदियों को निकट से देखा है। नदियों का संकट किसी एक घटना या समुदाय से उत्पन्न नहीं हुआ। यह वर्षों की उपेक्षा, अनियोजित शहरीकरण, अवैध खनन, कमजोर प्रशासन और पर्यावरणीय कानूनों के असमान अनुपालन का परिणाम है। नदियां एक दिन में नहीं मरतीं, वे प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा दम तोड़ती हैं।आज आवश्यकता इस बात की है कि हम प्रतीकात्मक बहसों से आगे बढ़ें और उन वास्तविक कारणों पर ध्यान दें, जो हमारी नदियों को लगातार प्रदूषित कर रहे हैं। सरकारों, प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों और नगर निकायों को यह बताना चाहिए कि प्रतिदिन कितना अनुपचारित सीवेज नदियों में जा रहा है, कितने उद्योगों पर कार्रवाई हुई, कितने अभियोजन चलाए गए और कितने नगर निकाय पर्यावरणीय मानकों का पालन करने में विफल रहे। यही वास्तविक पर्यावरणीय जवाबदेही होगी। दूध नदी में डालना यदि प्रदूषण है, तो अनुपचारित सीवेज, औद्योगिक अपशिष्ट, पशु वध से उत्पन्न जैविक अवशेष, प्लास्टिक, रसायन और डिटर्जेंट भी प्रदूषण हैं। नदी इनमें कोई भेद नहीं करती। इसलिए कानून और पर्यावरणीय चेतना को भी कोई भेद नहीं करना चाहिए।

यदि हमें सचमुच अपनी नदियों को बचाना है, तो चयनात्मक पर्यावरणवाद से ऊपर उठना होगा। पर्यावरण संरक्षण का आधार विज्ञान, समान कानून और निष्पक्ष प्रशासन होना चाहिए। तभी हमारी नदियां बचेंगी और पर्यावरणीय न्याय अपने वास्तविक अर्थों में स्थापित हो सकेगा। भारत को पर्यावरणीय आस्था नहीं, बल्कि पर्यावरणीय ईमानदारी की आवश्यकता है। नदियां किसी धर्म की नहीं, पूरे समाज की साझा धरोहर हैं। इसलिए प्रदूषण का मूल्यांकन भी धर्म नहीं, विज्ञान और कानून के आधार पर होना चाहिए।

एसआईआर पर कांग्रेस अलर्ट, एक-एक वोट बचाने बूथ तक रणनीति

एसआईआर पर कांग्रेस का अलर्ट बताता है कि अब चुनाव बूथ पर लड़े जाएंगे। बड़े भाषण और वादे अपनी जगह हैं, पर जीत-हार का फैसला कुछ हजार वोट तय करेंगे। कर्नाटक से तेलंगाना और दिल्ली से पंजाब तक एक-एक वोट की कीमत बढ़ गई है। कांग्रेस ने यदि बूथ स्तर की लड़ाई जीत ली, तो सत्ता की राह आसान हो सकती है, वरना मामूली चूक भारी पड़ सकती है। आने वाले दिन तय करेंगे कि मतदाता सूची की जंग में कौन बाजी मारता है और लोकतंत्र का यह सबसे बुनियादी दस्तावेज कितना मजबूत बनता है।

विशेष गहन पुनरीक्षण (एसआईआर) को लेकर सियासी घमासान तेज हो गया है। कांग्रेस ने अपनी चुनावी रणनीति पूरी तरह बदल दी है। पार्टी अब बूथ स्तर तक उतरकर एक-एक वोट बचाने की कवायद में जुट गई है। तीसरे चरण में शामिल कर्नाटक, तेलंगाना, पंजाब, दिल्ली, झारखंड, उत्तराखंड, महाराष्ट्र, हरियाणा समेत उत्तर-पूर्व के राज्यों में कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण अभियान शुरू हो गया है। कांग्रेस का मानना है कि करीबी मुकाबलों में कुछ हजार वोट भी नतीजा बदल सकते हैं। इसलिए मतदाता सूची के हर दावे और हर आपत्ति पर अब पार्टी की सीधी निगरानी रहेगी।

पिछले विधानसभा और लोकसभा चुनावों के आंकड़े कांग्रेस को चौकन्ना कर रहे हैं। कर्नाटक में 2023 के विधानसभा चुनाव में 224 में से 41 सीटों पर जीत-हार का अंतर पांच हजार वोट से कम रहा। यह कुल सीटों का करीब 18 प्रतिशत है। वहीं, तेलंगाना में 119 में से करीब 20 सीटों पर अंतर पांच हजार वोट से कम था। इनमें कई सीटों पर अंतर एक हजार वोट से भी कम रहा। पंजाब, दिल्ली और हरियाणा में भी कई सीटों पर मुकाबला बेहद करीबी रहा है। पार्टी का आकलन है कि यदि इतने ही नाम सूची से हट जाएं या प्रभावित हो जाएं, तो चुनाव जीतना कठिन हो जाएगा। इसलिए अब रणनीति का केंद्र बूथ बन गया है।

चुनाव आयोग विशेष गहन पुनरीक्षण अभियान चला रहा है। इसमें मतदाता सूची से फर्जी नाम हटाने, नए मतदाताओं को जोड़ने और पते में बदलाव करने का काम होता है। विपक्ष का आरोप है कि इस प्रक्रिया में चुनिंदा इलाकों में बड़े पैमाने पर नाम काटे जा रहे हैं। कांग्रेस का कहना है कि गरीब, दलित, अल्पसंख्यक और प्रवासी मतदाताओं के नाम हटने का खतरा ज्यादा है। इसी आशंका को देखते हुए पार्टी ने हर बूथ पर नजर रखने का फैसला किया है।

कर्नाटक के पूर्व मुख्यमंत्री सिद्धारमैया ने बेंगलुरु में कांग्रेस कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण कार्यक्रम में भाग लिया और साफ कहा कि जिन सीटों पर जीत-हार का अंतर चार-पांच हजार वोट का होता है, वहां एक-एक नाम कीमती है। प्रशिक्षण में कार्यकर्ताओं को बताया जा रहा है कि मतदाता सूची कैसे जांचें, दावा-आपत्ति का फॉर्म कैसे भरें, बीएलओ से कैसे समन्वय बनाएं और चुनाव आयोग के पोर्टल पर ऑनलाइन आपत्ति कैसे दर्ज करें। हर विधानसभा क्षेत्र में लीगल टीम बनाई गई है, जो जरूरत पड़ने पर तुरंत याचिका दाखिल करेगी।

प्रदेश इकाइयों को निर्देश दिए गए हैं कि एसआईआर के दौरान आने वाले प्रत्येक दावे और आपत्तियों पर नजर रखें और जरूरत पड़ने पर तुरंत कानूनी तथा चुनाव आयोग के स्तर पर कार्रवाई करें। कांग्रेस हर बूथ पर मतदाता सूची का मिलान, नए मतदाताओं के पंजीकरण और नाम हटने की शिकायतों की निगरानी की व्यवस्था पर काम कर रही है। बूथ-लेवल एजेंटों को मतदाता सूची की हार्ड कॉपी दी जा रही है, ताकि घर-घर सत्यापन हो सके। व्हाट्सऐप ग्रुप बनाकर पल-पल की जानकारी साझा की जा रही है।

तेलंगाना के मुख्यमंत्री रेवंत रेड्डी ने कांग्रेस नेताओं को पहले ही चेतावनी दे दी है। उन्होंने कहा है कि यदि वे एसआईआर अभियान को लेकर पार्टी के निर्देशों का पालन नहीं करेंगे, तो उनके खिलाफ सख्त कार्रवाई की जाएगी। उन्होंने दोटूक कहा कि यदि पार्टी को नुकसान हुआ, तो वह मूकदर्शक बनकर नहीं बैठेंगे। रेवंत रेड्डी का यह बयान कार्यकर्ताओं में ऊर्जा भर रहा है और स्थानीय नेताओं को सक्रिय कर रहा है।

कर्नाटक में 41 सीटों पर पांच हजार से कम का अंतर बताता है कि बूथ स्तर पर मामूली चूक भी सरकार बदल सकती है। इसी तरह तेलंगाना में 20 सीटों पर करीबी मुकाबला रहा है। कांग्रेस की रणनीति है कि इन सीटों पर विशेष फोकस रखा जाए। इन क्षेत्रों में मतदाता सूची का शत-प्रतिशत सत्यापन कराया जाएगा। नए मतदाता, खासकर 18 से 19 साल के युवाओं को जोड़ने का अभियान चलेगा। कॉलेजों और कोचिंग संस्थानों में शिविर लगाए जाएंगे।

दिल्ली की सात लोकसभा सीटों में पिछले चुनाव में तीन सीटों पर मुकाबला बेहद करीबी रहा था। पंजाब में ग्रामीण सीटों पर प्रवासी मजदूरों के नाम मतदाता सूची से हटने की शिकायतें रही हैं। हरियाणा में जाट बहुल सीटों पर वोटों का बंटवारा नतीजा तय करता है। इन राज्यों में कांग्रेस ने बूथ कमेटियों को सक्रिय कर दिया है। हर बूथ पर पांच सदस्यीय टीम बनाई गई है, जिसमें महिला, युवा और अल्पसंख्यक प्रतिनिधि शामिल हैं।

भाजपा का कहना है कि कांग्रेस एसआईआर के बहाने फर्जी मतदाताओं को बचाना चाहती है। पार्टी नेताओं का आरोप है कि बांग्लादेशी और रोहिंग्या घुसपैठियों के नाम मतदाता सूची में हैं और एसआईआर से वे हटेंगे, तो कांग्रेस को नुकसान होगा। भाजपा ने भी अपने कार्यकर्ताओं को बूथ स्तर पर सक्रिय रहने को कहा है। ऐसे में आने वाले दिनों में मतदाता सूची को लेकर सियासी टकराव और बढ़ सकता है।

चुनाव आयोग ने स्पष्ट किया है कि एसआईआर का उद्देश्य स्वच्छ और त्रुटिहीन मतदाता सूची बनाना है। आयोग ने कहा है कि किसी भी वैध मतदाता का नाम नहीं कटेगा और सभी दावों-आपत्तियों का निपटारा पारदर्शी तरीके से होगा। आयोग ने राजनीतिक दलों से अपील की है कि वे बीएलओ का सहयोग करें और अफवाह न फैलाएं। फिर भी मैदान में उतरी पार्टियां कोई जोखिम नहीं लेना चाहतीं। सबसे बड़ी चुनौती समय की कमी है। एसआईआर की अंतिम तिथि नजदीक है और लाखों नामों का सत्यापन बाकी है। ग्रामीण इलाकों में नेटवर्क की समस्या है और कई जगह बीएलओ समय पर नहीं पहुंच पा रहे हैं। कांग्रेस के सामने दोहरी परीक्षा है। एक तरफ कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करना है, दूसरी तरफ मतदाताओं को जागरूक करना है कि वे स्वयं भी मतदाता सूची में अपना नाम जांच लें।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)